सामवेद में प्रयुक्त सांगीतिक तत्वों का दार्शनिक विवेचन

– डॉ0 राकेश कुमार दास

वैदिक कालीन संगीत की चर्चा करने से पूर्व इस बात पर यहाँ ध्यान देना अपेक्षित है कि वेद अलिखित या अल्पलिखित थे। वास्तव में उस समय की रचनाएँ लेखन से अधिक भाषा तथा ध्वनि पर आधारित थी। यहाँ चित्रों तथा कुछ प्रतीकों का प्रयोग भी सामने आता है। इस संदर्भ में कुछ उदाहरण इस प्रकार है –

''अपने प्रातिभ चक्षु (Intutive eye) के सहारे साक्षात्कृत धर्मा ऋषियों के द्वारा अध्यात्मशास्त्र के विमल तत्वों की विशाल राशि का नाम 'वेद' है।[1]

ऋग्वेद के उपलब्ध साक्ष्यों में प्राचीन तथा नवीन ऋषियों को वेद मंत्रों का कर्त्ता बताया गया है –

''इदं ब्रह्म क्रियमणं नवीयः''[2]

''ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो बसिष्ठाः''[3]

''भारत के वेदमर्मज्ञ प्राचीन शास्त्रों तथा शास्त्रज्ञों ने ऋषियों को वैदिक मंत्रों का द्रष्टा माना है, कर्त्ता नहीं।''[4]

वेद अपोरूषेय है। वह स्वतः आविर्भूत (Appeared) होने वाला नित्य पदार्थ है। उसकी उत्पत्ति में किसी भी पुरूष का, परमेश्वर का भी उद्योग क्रियाशील नहीं है।[5]

उस समय के लोगों ने भाषा तथा ध्वनि द्वारा भावों को व्यक्त करने में उच्चारण का विशेष महत्व है। एक भाषा में ध्वनि तथा उसके सार्थक उच्चारण का विशेष आवश्यकता होती है। इसी कारण एक संवाद एक योग्य तथा अर्थपूर्ण भाषा बन सकता है। वैदिक युग में उच्चारण तथा भाषा (ध्वनि) के शुद्ध तथा निश्चित उपयोग में भी संगीतका पुट था। संगीत कहने का तात्पर्य स्वर तथा उच्चारण का अर्थपूर्ण मेल है। वैदिक युग में मनुष्य ने धीरे–धीरे भाषा में प्रयुक्त अपनी ही ध्वनि को परखना आरंभ किया तत्पश्चात् उसने भाषा में सर्वप्रथम एक स्वर की खोज की और उसका प्रयोग भी आरंभ किया। संगीत को केवल उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों की लिखित तथा प्रस्तुत प्रमाणिकता तथा उस समय के मंत्रोच्चारण से जोड़ना एक भारी भूल होगी। यहाँ केवल प्रथम स्वर–व्याकरण तथा उसके विज्ञान का जन्म हुआ था, स्वयं स्वर अथवा ध्वनि

का नहीं । उस युग के मानव द्वारा प्रयुक्त ध्वनियाँ स्वयं ही संगीत का स्वरूप लिए हुए थी और इन्हीं में से उसने सार्थक तथा स्वीकार्य ध्वनि को एक निश्चित स्वर के रूप में पहचाना तथा चुना।

वैदिक संहिता में साम का महत्व नितान्त गौरवमय माना जाता है। गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं सामवेद को अपना ही स्वरूप बतलाया है –''वेदानां सामवेदोऽस्मि''[6]

सामवेद को सैद्धान्तिक संगीत का मूल कहा जाता है। संगीत का व्याकरण भी सामवेद से ही निकला है। कला के लिए जागृत तथा विद्वान को ही साम की प्राप्ति होती है। ऋग्वेद में उल्लिखित है कि –

'यो जागर तम् ऋचः कामयन्ते

यो जागर तमुसमानि यन्ति।''[7]

साम शब्द की संगीत से घनिष्ठता की एक बड़ी सुन्दर निरूक्ति वृहदारण्यक उपनिषद् में दी गयी है –

''सा च अमश्चेति तात्साम्नः समात्वम्''[8]

यहाँ 'सा' शब्द का अर्थ है 'ऋक्' और 'अम' शब्द का अर्थ है गांधार आदि स्वर। अतः साम शब्द की व्युत्पत्ति का अन्य अर्थ हुआ ऋक् के साथ संबद्ध स्वर प्रधान गायन।

''ऋग्वेद की ऋचाएँ भी सामवेद का आधार कहलाती है। इसका अर्थ है कि सामवेद ने शब्द ऋग्वेद से लिया है तथा स्वर उसका स्वयं का है।अतः साम का अर्थ ऋचाओं पर किया गया गान है जिसमें मातु या बोल ऋग्वेद के हैं और धातु का स्वर स्वयं साम का है।''[9]

सामवेद के दो प्रधान भाग होते हैं। 'आर्चिक' तथा 'गान'। आर्चिक का शाब्दिक अर्थ है ऋक् समूह, जिसके दो भाग होते हैं –

(1) पूर्वार्चिक – इसमें छः अध्याय है। प्रत्येक अध्याय के दो अर्कखण्ड हैं और प्रत्येक खंड में एक दशति है जिसमें ऋचाएँ हैं।

(2) उत्तरार्चिक – इसमें नौ अध्याय है। उत्तरार्चिक में समग्र मंत्रों की संख्या बारह सौ पच्चीस (1225) है। सामवेद की ऋचाएँ ऋग्वेद से सम्मिलित की गयी है। किन्तु कुछ ऋचाएँ नितान्त नवीन है। इसे हम विस्तार से निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं –

ऋग्वेद की ऋचाएँ– 1504 + पुनरूक्त 267 = 1771

सामवेदकी नवीन ऋचाएँ 99 + पुनरूक्त 5 = 104

साम संहिता की संपूर्ण ऋचाएँ = 1875

सामवेद में उस समय के मानव की कला के लिए सामंजस्य वाले तत्वों तथा क्षेत्रों से संबंध खोजना और नये–नये प्रयोग को अनुभव में लाने का मनोविज्ञान सामने आता है। यहाँ मनुष्य द्वारा कुछ मंत्रों में चार, पाँच तथा छः स्वरों तक के प्रयोग की विधि सामने आने लगी थी।

भारतीय संगीत शास्त्र का मूल इन्हीं सामगायन पर अबलंवित है। भारतीय संगीत जितना सूक्ष्म, बारीक तथा वैज्ञानिक है उसे जगत ने माना है। नादीय शिक्षा के अनुसार गान के निम्नलिखित प्रकार बताए गये हैं –

1. आर्चिक (एक स्वर गान) :– आर्चिक गान में ऋचाओं को एक ही स्वर का प्रयोग करके गाया जाता था। जैसे – सा–सा–सा। यह गान हवन मंत्र पाठ जप इत्यादि के लिए उपयुक्त था।

2. गायिक (द्विस्वर गान) – गायिक दो स्वरों में गायी जाती थी; जैसे – सा–सा, नि–नि,।

3. सामिक (तीन स्वरों का गान) – सामयिक में तीन स्वरों का प्रयोग होता था। प्रारंभिक साम गान तीन स्वरों से मुक्त था। बाद में पाँच, छः तथा कुछ सामगानों में सात स्वरों तक जा पहुँचा। यह मनुष्य के द्वारा अपनी भाषा में निहित स्वरों की सटीक पहचान तथा उनसे उत्पन्न होने वाले भावों को आत्मसात करने की योग्यता को प्राप्त कर लेने का स्पष्ट प्रमाण था।

वैदिक युग में मानव का मनोविज्ञान प्रकृति के प्रत्येक रहस्य को सुलझाने में लगा था। उसने देवता के रूप, उनकी शक्ति के चिन्हों के पश्चात् भाषा तथा स्वरों को वैज्ञानिक रूप में पहचानना प्रारंभ कर दिया था। वेदों में उपलब्ध समस्त ऋचाएँ तथा अन्य सामग्री यज्ञ से आरंभ होकर उपासना, साम (संगीत) तथा उपचार तक के विस्तृत क्षेत्र को खँगाल रही थी। यहाँ मानव की जिज्ञासा तथा खोज की प्रवृति का उत्तम एवं प्रशंसनीय पक्ष उचागर होता है।

वैदिक युग के मानव ने समाज, संस्कार, सभ्यता, नृत्य, संगीत, मंत्र–तंत्र, विवाह–दान, शाप, देह शुद्धिकरण, उपचार, उपकरण, कृषि इत्यादि जीवन मूलक विषयों को अपना लिया था। वेदों को कई स्थानों पर इस विषय का क्रमबद्ध विकास सामने आता है।

वैदिक मंत्रों में काव्यात्मकता का उपयोग, उस मानव द्वारा आनंद तथा अनुभूति का प्रथम स्पष्ट प्रकटीकरण है। 'प्रथम' से ताप्पर्य एक परंपरा का आरंभ है। वैदिक मानव के पास सर्वप्रथम वैज्ञानिक उपकरण स्वर ही था। इसी स्वर को उसने अभ्यांतरिक स्वर (Inner Sound)कहा। एक अन्य सूक्ष्म वाक् (Subtle Sound) का भी उल्लेख मिलता हे जिसे बुद्धि तथा ज्ञान के विकास के लिए उत्तम माना गया है।

वेदों का निष्कर्ष दिव्य ध्वनियों से भरा है। उस समय का मानव बड़ी ही तीव्रता से इस पर प्रयोग कर रहा था। दिव्य ध्वनियों के माध्यम से मानव के ब्रह्मनाड़ी, केन्द्रीय आकाश अथवा व्योम में पार्थिव वायु के मोह के परे पहुँचने की चर्चा भी सामने आती है। इसके अतिरिक्त स्थूल वाक्या ध्वनि (Physical Sound) तथा बाह्य जगत के अंशों (Adventitions elements) का संबंध तथा विशुद्ध ध्वनि (Creative potency) का उल्लेख भी सामने आता है। यह समस्त क्रियाएँ मानव के प्रयोगकारी मनोविज्ञान का प्रमाण है। यहाँ मानव द्वारा प्रकृति के साथ–साथ स्वयं की देह में उपस्थित ऊर्जा (Energy) तथा प्राण (Air) को जानने की चेष्टा प्रत्यक्षतः होती है। कहा जाता है ''एक शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रमुक्तः स्वर्ग लोके च कामधुग भवति''[10] अर्थात् एक शब्द के पूर्ण ज्ञान और सम्यक प्रयोग से ऐह लौकिक पर लौकिक–दोनों फलों की प्राप्ति हो सकती है। यही वैदिक ज्ञान का रहस्य है। इस संबंध का पूर्ण ज्ञान तभी हो सकता है जब शब्द को बाह्य तत्वों से विमुक्त और परिमार्जित किया जाता है। सामगान में मूल रूप से यही वैदिक दर्शन निहित है।

इस प्रकार संगीत (ध्वनि) तथा स्वर का आधिपत्य बढ़ता दिखाई पड़ता है। धार्मिक विकास के साथ–साथ आर्य जाति ने साम गानों में स्वरों तथा मात्राओं का भी विकास करना प्रारंभ कर दिया था। ऋग्वेद की रचना में भी काव्य तथा स्वरों की उपलब्धता थी। जिसे बाद में 'सामवेद'' के रूप में रचा गया। यह उस समय मानव के मस्तिष्क में ध्वनि पर किये जाने वाले विभिन्न प्रयोगों का उत्कृष्ट प्रमाण था। ग्राम गेय, आरण्य गेय, ऊहगेय, ऊध्यगेय इसी स्वर प्रयोग विधि का प्रमाण है। इनमें मनोरंजन, साधना, पूजा, उत्सव तथा रहस्य (तंत्र) इत्यादि के ज्ञान कापुट

सामने आता है। वेदांगों में छः में चार शिक्षा–विषय को में संगीत भाषा का उल्लेख भी इसी ध्वनि एवं स्वर के विकास की कुंजी है।

संदर्भ–

1. उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य तथा संस्कृति, पृ0 3, शारदा मंदिर काशी, 1955

2. विश्व बंधु संपादक : ऋग्वेद 7/35/14 वी0वी0आर0 आई होशियारपुर

3. वही, पृ0 7 – 7/35/14

4. उपाध्याय बलदेव, वैदिक साहित्य तथा संस्कृति, पृ0 10, शारदा मंदिर, काशी, 1955

5. वही, पृ0 14

6. भागवद् गीता – 10/22

7. ऋग्वेद – 5/44/14

8. वृहदारण्यक उपनिषद् – 1/3/22, संपादक : आचार्य हरिराम शास्त्री, संस्कृत संस्थान, बरेली, 1986

9. शर्राफ रामा (डॉ0), भारतीय संगीत सरिता, पृ0 5

10. उपाध्याय बलदेव, वैदिक साहित्य – वेदरहस्यवाद, पृ0 29, शारदा मंदिर काशी, 1955